16
R. Paper

UGC Approved Journal No – 47168
(IIJIF) Impact Factor - 6.234

ISSN 2231 – 413X

SHODH PRERAK

A Multidisciplinary Quarterly International *Peer Reviewed* Refereed Research Journal

Chief Editor:
Dr. Shashi Bhushan Poddar

Editors:
Dr. Reeta Yadav
Dr. Pradeep Kumar

Volume 15 **Issue III** **July** **2025**

Published By:
Veer Bahadur Seva Sanstha
Lucknow
Printed at:
F/70 South City, Rai Bareilly Road, Lucknow-226025
E-mail: shodhprerak@gmail.com, shodhprerakbbau@gmail.com
www. shodhprerak.com
Cell NO.: 09415390515, 09450245771, 08960501747
Cite this Volume as S/P, Vol. 15, Issue III, July 2025

- **भारतीय इतिहास लेखन में स्त्री और क्षेत्रीय दृष्टिका अंतर्संबंध** 41-47
  डॉ० कुन्दन कुमार पासवान, सहायक प्राध्यापक (अतिथि संकाय) किशोरी सिन्हा महिला महाविद्यालय, औरंगाबाद, बिहार
- **बौद्ध दर्शन में प्रमाण लक्षण** 48-52
  अजीत कुमार उपाध्याय, शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।
- **आधुनिक पुस्तकालयों में ज्ञान प्रबंधन की भूमिका : सूचना युग के संदर्भ में एक विश्लेषण** 53-58
  नीरज कुमार सिंह, पुस्तकालयाध्यक्ष, सहकारी पी.जी. कॉलेज मिहरावां, जौनपुर
- **मृच्छकटिकम् में उपनिबद्ध द्यूत-क्रीड़ा : एक विश्लेषण** 59-68
  डॉ0 हरीश दास, सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना-05
- **"वर्तमान में भारतीय विदेश नीति में वसुधैव कुटुंबकम की भावना की प्रासंगिकता"** 69-74
  साक्षी दीक्षित, शोधार्थी (रिसर्च स्कॉलर) समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा, dixitsakshi000@gmail.com
  डॉ. रचना यादव, अनुसंधान पर्यवेक्षक (असिस्टेंट प्रोफेसर) समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान,आगरा, drrachnayadav@dei.ac.in
- **स्त्री-पुरुष तुलना में नारी चेतना का प्रतिवाद : तराबाई शिंदे के वैचारिक प्रतिरोध की समीक्षा** 75-83
  डॉ. संजय शर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर- राजनीति विज्ञान, सहकारी पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, मिहरावां, जौनपुर

स्त्री-पुरुष तुलना में नारी चेतना का प्रतिवाद : तराबाई शिंदे के वैचारिक प्रतिरोध की समीक्षा

*डॉ. संजय शर्मा**

तराबाई शिंदे का ग्रंथ "स्त्री–पुरुष तुलना" भारतीय नारीवादी विमर्श की पहली मौलिक रचना है। उन्नीसवीं सदी में जब स्त्रियों की स्थिति धर्मशास्त्रों और पितृसत्तात्मक मानदंडों से नियंत्रित थी, शिंदे ने मनुस्मृति, धर्मशास्त्रों और सामाजिक रूढ़ियों में निहित दोहरे नैतिक मानदंडों की तार्किक आलोचना प्रस्तुत की। उनका मूल प्रश्न था– यदि स्त्री–पुरुष एक ही सृष्टिकर्ता की संतान हैं, तो नैतिकता के मापदंड भिन्न क्यों हैं? शिंदे ने स्त्री को विवेकशील, नैतिक और आत्मनिर्णयकारी अस्तित्व के रूप में पुनर्स्थापित किया। उनका चिंतन फुले परंपरा, बौद्ध दर्शन और अंबेडकरवादी विचारों से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह शोध तराबाई शिंदे के वैचारिक प्रतिरोध का दार्शनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा भारतीय नारी चेतना की स्वदेशी जड़ों को उजागर करता है।

कीवर्ड्स: तराबाई शिंदे, स्त्री–पुरुष तुलना, भारतीय नारीवाद, नैतिकता, पितृसत्ता, उन्नीसवीं सदी, वैचारिक प्रतिरोध

भूमिका:

उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज सुधारवादी चेतना और बौद्धिक उथल–पुथल का एक ऐसा दौर था, जहाँ सामाजिक संरचनाओं की पुनर्व्याख्या का प्रयास हो रहा था। इसी ऐतिहासिक–सांस्कृतिक संदर्भ में, जब स्त्री की सामाजिक स्थिति को धर्मशास्त्र और पितृसत्ता के कठोर मानदंड (काले, 2020, पृ. 67) के माध्यम से परिभाषित किया जा रहा था, तराबाई शिंदे (1850–1910) का लेखन एक क्रांतिकारी हस्तक्षेप के रूप में उभरा। प्रखर चिंतक तराबाई शिंदे ने अपने ग्रंथ "स्त्री–पुरुष तुलना"(1882) के माध्यम से स्त्री की स्थिति, नैतिकता और धर्मग्रंथों में निहित असमानताओं पर तीखा प्रश्न उठाया। यह कृति भारतीय नारी चेतना की पहली विद्रोही आवाज़ थी, जिसने उस समय के समाज में बौद्धिक क्रांति का आरंभ किया (काले, 2020, पृ. 67)। तराबाई ने मनुस्मृति, धर्मशास्त्र और सामाजिक परंपराओं को चुनौती देते हुए कहा कि स्त्री की हीनता कोई प्राकृतिक सत्य नहीं, बल्कि पुरुषसत्तात्मक समाज द्वारा गढ़ी गई कल्पना है। उन्होंने लिखा – यदि ईश्वर ने स्त्री और पुरुष को समान भाव से रचा है, तो नैतिकता के मापदंड भिन्न क्यों?"(मोहिते, 2022, पृ. 45)। संदीप देशमुख (2020, पृ. 4) के अनुसार, तराबाई का लेखन केवल सामाजिक आलोचना नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण का उद्घोष था। वहीं सुजाता घोष और इप्सिता पटनायक (2023, पृ. 88) का मानना है कि शिंदे की लेखनी धर्म और तर्क के बीच एक सेतु रचती है – जहाँ नारी पहली बार तर्कशील और विवेकवान सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित होती है। प्रिया जोशी (2019, पृ. 3) ने इसे भारतीय स्त्री–दर्शन की प्रारंभिक चेतना बताया है, जो आधुनिक नारीवाद की नींव रखती है। उनके अनुसार, शिंदे का विद्रोह केवल पुरुष–विरोध नहीं था, बल्कि सामाजिक विवेक और आत्मसम्मान की पुनर्स्थापना का प्रयास था।

आज जब शिक्षा, समाज और राज्य फिर से समानता और न्याय के सिद्धांतों पर विचार कर रहे हैं, तब तराबाई शिंदे का यह प्रतिवाद और भी प्रासंगिक हो जाता है। उनका लेखन यह स्पष्ट करता है कि नारीवाद कोई आयातित विचार नहीं, बल्कि भारतीय नैतिक परंपरा के भीतर से उपजा आत्मस्वर है – जो सत्य, तर्क और करुणा के संगम पर खड़ा है। इसलिए "स्त्री–पुरुष तुलना" को भारतीय नारी चेतना का प्रथम घोषपत्र कहा जा सकता है – जिसने परंपरा को चुनौती दी और समानता का दार्शनिक आधार स्थापित किया।

शोध के उद्देश्य:

1. तराबाई शिंदे के चिंतन में नारी–चेतना के दार्शनिक और सामाजिक आयामों का विश्लेषण करना।

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर- राजनीति विज्ञान, सहकारी पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, मिहरावां, जौनपुर

2. पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री–पुरुष असमानता के प्रति उनके प्रतिवाद के स्वरूप को पहचानना।
3. आधुनिक समाज में शिंदे के विचारों की उपयोगिता और वैचारिक प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।
4. भारतीय नारी–विमर्श में शिंदे की भूमिका को तुलनात्मक दृष्टि से मूल्यांकित करना।

शोध की प्रासंगिकता:

यह शोध इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भारतीय नारी–विचार की उस परंपरा को पुनःप्रकाशित करता है जिसने पहली बार स्त्री की स्वतंत्रता को नैतिक प्रश्न के रूप में स्थापित किया। शिंदे का चिंतन केवल इतिहास की आलोचना नहीं, बल्कि समाज में समानता की चेतना को जगाने का माध्यम है। आज जब नारीवाद को नीति और अधिकार के सीमित संदर्भ में देखा जाता है, यह अध्ययन उसे आत्मबोध और सामाजिक विवेक के स्तर पर पुनःपरिभाषित करता है।

शोध की समस्या:

भारतीय समाज में स्त्री–पुरुष समानता का विचार वैदिक काल से उपस्थित रहा है, फिर भी व्यवहार में यह असंतुलन आज तक बना हुआ है। तराबाई शिंदे ने "स्त्री–पुरुष तुलना" में जो प्रश्न उठाए–वे आज भी शिक्षा, धर्म, परिवार और राजनीति के क्षेत्र में अनुत्तरित हैं। मुख्य समस्या यह है कि नारी की स्वतंत्र चेतना को अक्सर सामाजिक मर्यादा, धार्मिक बंधन और नैतिक अनुशासन के नाम पर सीमित कर दिया गया। शोध का मूल प्रश्न यही है कि – क्या आधुनिक भारतीय समाज वास्तव में उस समानता को स्वीकार करने को तैयार है जिसकी मांग शिंदे ने उन्नीसवीं सदी में की थी? और यदि नहीं, तो इसका कारण केवल परंपरा है या आधुनिक सोच की असमान संरचना? उदाहरणार्थ, आधुनिक कॉर्पोरेट जगत में ग्लास सीलिंग की अवधारणा या डिजिटल मीडिया पर स्त्रियों के प्रति होने वाली हिंसा, यह सिद्ध करती है कि असमानता के रूप केवल बदले हैं, समाप्त नहीं हुए हैं।

शोध की परिकल्पना:

1. तराबाई शिंदे की नारी–चेतना केवल प्रतिवाद नहीं, बल्कि भारतीय नैतिकता की पुनर्व्याख्या है।
2. उनका चिंतन आज भी समाज में लैंगिक समानता के लिए उपयोगी वैचारिक ढांचा प्रस्तुत करता है।
3. यदि शिक्षा और नीति में इस चिंतन को पुनःस्थापित किया जाए, तो भारतीय समाज में नारी की बौद्धिक स्वतंत्रता और नैतिक भागीदारी दोनों सशक्त होंगी।

शोध की पद्धति:

यह शोध गुणात्मक और वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन का प्रमुख स्रोत तराबाई शिंदे की कृति स्त्री– पुरुष तुलना है, जिसका विश्लेषण नारीवादी, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से किया गया है। इस शोध में क्लोज टेक्सुअल एनालिसिस तकनीक का प्रयोग किया गया है, जिसके तहत स्त्री–पुरुष तुलना के मूल पाठ, उसकी भाषा, तर्क–शैली और रूपकों का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। साथ ही, हिस्टॉरिकल एंड कंटेक्सुअल मेथड्स के तहत 19वीं सदी के महाराष्ट्र के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश में तराबाई के विचारों का मूल्यांकन किया गया है। सहायक सामग्री के रूप में संबंधित शोध–पत्र, नारी–विचार पर आधारित पुस्तकें, और समकालीन आलोचनात्मक लेखों का प्रयोग किया गया है। शोध में कंपैरेटिव एनालिसिस और टेक्सुअल रिव्यू तकनीक का प्रयोग कर शिंदे के विचारों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और आधुनिक संदर्भ दोनों में व्याख्यायित किया गया है।

साहित्य समीक्षा:

डॉ० भीमराव आम्बेडकर (1936) ने एनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट में यह प्रतिपादित किया कि भारतीय समाज की ब्राह्मणवादी व्यवस्था स्त्री को अधीनता में रखकर अपने धर्म को पवित्र बनाए रखती है। यह विचार तराबाई शिंदे की "स्त्री–पुरुष तुलना" से सीधा साम्य रखता है, जहाँ उन्होंने धर्मग्रंथों में वर्णित पितृसत्तात्मक नैतिकता को चुनौती दी। गेल ओमवेड्ट (1994) ने दलित एंड बहुजन फेमिनिज्म में तराबाई को भारतीय स्त्रीवादी विमर्श की अग्रणी चिंतक कहा और उनके लेख को "दलित–स्त्री मुक्ति के वैचारिक घोषणापत्र" के रूप में देखा। शर्मिला रेगे (2006) की राइटिंग कास्ट/राइटिंग जेंडर यह स्थापित करती है कि तराबाई ने जाति और लिंग– दोनों के अंतर्संबंधों को उजागर किया। उनके अनुसार, "स्त्री– पुरुष तुलना" भारतीय समाज में लिंग असमानता को धार्मिक और सामाजिक संरचना

के संदर्भ में पहली बार परिभाषित करती है। उमा चक्रवर्ती (1993) ने रिराइटिंग हिस्ट्री: द लाइफ़ एंड टाइम्स ऑफ़ वुमन इन कोलोनियल इंडिया में कहा कि औपनिवेशिक भारत में स्त्रियों की नैतिक छवि को पुरुषवादी सत्ता ने गढ़ा, और तराबाई ने उस मिथ्या छवि को अपने तर्कों से तोड़ा। सुषमा देसाई (2009) की फेमिनिस्ट कॉन्शसनेस इन मराठी लिटरेचर यह दर्शाती है कि मराठी साहित्य में नारी चेतना की आरंभिक जड़ें तराबाई की लेखनी से जुड़ी हैं। उन्होंने कहा कि "तराबाई की भाषा ही विद्रोह है।" लता पिल्लै (2016) ने तराबाई शिंदे एंड अर्ली फेमिनिस्ट डिस्कोर्स में उनके विचारों को भारतीय स्त्रीवादी आंदोलन का प्रस्थान –बिंदु बताया और कहा कि उन्होंने स्त्री की नैतिक स्वतंत्रता को समाज के पुनर्गठन का आधार बनाया। मनीषा काले (2024) ने अ केस स्टडी ऑफ़ तराबाई शिंदे इन महाराष्ट्र में यह प्रतिपादित किया कि शिंदे ने सामाजिक सुधार आंदोलनों में स्त्रियों की बौद्धिक भागीदारी को नया आयाम दिया। देशमुख और प्रिया जोशी (2023) ने फेमिनिस्ट हिस्टोरियोग्राफी एंड तराबाई शिंदे'ज़ रेडिकल थॉट में यह स्थापित किया कि शिंदे का प्रतिवाद केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिकता के पुनर्रचना का प्रयास था। गेल मिनाल पिल्लै (2022) और संगीता पाटिल (2021) ने अपने तुलनात्मक अध्ययन में कहा कि "स्त्री–पुरुष तुलना" आधुनिक नारीवाद के मूल तत्त्व–आत्म–सम्मान, समानता और स्वतंत्रता–का वैचारिक पूर्वाभास देती है।

तराबाई शिंदे पर मौजूदा शोध मुख्यतः उनके ऐतिहासिक और सामाजिक महत्व तक सीमित हैं। उनके विचारों की दार्शनिक जड़ों का गहन विश्लेषण अभी भी अपेक्षित है। विशेष रूप से, भारतीय दार्शनिक परंपराओं जैसे न्याय दर्शन के तर्कशास्त्र और बौद्ध दर्शन की करुणा की अवधारणाओं के साथ उनके संबंध पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया है। साथ ही, अन्य भारतीय भाषाओं में समकालीन नारीवादी लेखन के साथ तुलनात्मक अध्ययन का अभाव है। आधुनिक लैंगिक न्याय और नारीवादी विमर्श से उनके सैद्धांतिक संवाद को स्थापित करने की दिशा में और शोध की आवश्यकता है।

सैद्धांतिक ढाँचा:

यह शोध तराबाई शिंदे के विचारों का विश्लेषण करने के लिए चार परस्पर संबंधित सैद्धांतिक दृष्टिकोणों का उपयोग करता है–

1.नारीवादी सिद्धांत

शिंदे का लेखन उस समय के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में स्त्री–विरोधी प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक मौलिक चुनौती प्रस्तुत करता है। जहाँ सिमोन द बोउवार (1949, पृ. 295) ने स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है– का सिद्धांत दिया, वहीं शिंदे (1882, पृ. 12) ने भारतीय धार्मिक ढाँचे के भीतर रहते हुए ही इसी विचार को स्थापित किया। उनका नारीवाद केवल समानता तक सीमित नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, न्याय और सामाजिक परिवर्तन की एक व्यापक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है (जोशी, 2022, पृ. 148; ओमवेड्ट, 2002, पृ. 576)।

2. उत्तर–औपनिवेशिक दृष्टिकोण

शिंदे ने औपनिवेशिक सुधारवाद की उस नीति को पहचाना जो भारतीय स्त्रियों को दया की पात्र बनाकर उनकी वास्तविक सामाजिक–नैतिक समानता से दूर रखती थी (रिगे, 2006, पृ. 213)। यह दृष्टिकोण गायत्री स्पिवाक (1988, पृ. 271) के इस प्रश्न से मेल खाता है कि क्या उप–वर्ग बोल सकता है? शिंदे का लेखन इसका उत्तर है – स्त्री को स्वयं वक्ता बनना होगा। इस प्रकार, उनका विमर्श औपनिवेशिक सुधारवाद और धर्मग्रंथीय पितृसत्ता दोनों के समानांतर एक सशक्त प्रतिवाद है (चक्रवर्ती, 1993, पृ. 54; पाटिल, 2023, पृ. 252)।

3. सांस्कृतिक–दार्शनिक विमर्श

शिंदे ने भारतीय परंपरा में नारी की शक्ति की प्रतीकात्मक छवि को तोड़कर उसे एक मूर्त, स्व–सत्ता सम्पन्न अस्तित्व के रूप में स्थापित किया। उनकी यह दृष्टि सावित्रीबाई फुले (1854, पृ. 23) और पंडिता रमाबाई (1887, पृ. 15) के सामाजिक–नैतिक सुधार के प्रयासों से साम्य रखती है, जहाँ ज्ञान और स्वाधीनता को नारी–मुक्ति का मूल आधार माना गया। यह विचार अंबेडकर (1942, पृ. 8) के

सामाजिक न्याय के सिद्धांत से भी जुड़ता है, जो समानता को एक नैतिक क्रांति का केंद्र बिंदु मानता है (ओमवेड्ट, 1995, पृ. 110)।

4. अंतर्विषयी दृष्टिकोण

तराबाई शिंदे का चिंतन दर्शन, समाजशास्त्र, साहित्य और राजनीतिक विज्ञान के अंतर्संयोग पर टिका है। उनके लिए स्त्री–पुरुष असमानता केवल एक सामाजिक मुद्दा नहीं, बल्कि एक गहन नैतिक एवं दार्शनिक समस्या है (काले, 2020, पृ. 91)। इस प्रकार, उनका वैचारिक प्रतिरोध भारतीय नारीवाद को आत्म–प्रज्ञा, स्व–सम्मान और सामाजिक न्याय की त्रयी से जोड़कर एक सशक्त दार्शनिक आधार प्रदान करता है (पाटिल, 2023, पृ. 264; जोशी, 2022, पृ. 156)।

विश्लेषण एवं व्याख्याः

यह शोध ताराबाई शिंदे के विचारों का विश्लेषण एवं व्याख्या निम्न बिंदुओं के तहत करता है–

दार्शनिक विश्लेषणः दार्शनिक विश्लेषण के महत्वपूर्ण बिंदु हैं–

1. आत्म–प्रज्ञा और सामाजिक न्याय का द्वंद्व

ताराबाई शिंदे का चिंतन भारतीय समाज में स्त्री–पुरुष के नैतिक असंतुलन पर केंद्रित है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि असमानता केवल सामाजिक व्यवस्था की समस्या नहीं, बल्कि आत्म–प्रज्ञा के अभाव का परिणाम है। उनकी दृष्टि में धर्मग्रंथीय पितृसत्ता ने पुरुष को कर्त्ता और स्त्री को वस्तु के रूप में स्थापित किया, जिससे स्त्री की चेतना की अवहेलना हुई। इस संदर्भ में उनका विचार उपनिषदों में वर्णित "आत्मा ही ब्रह्म है" (अहं ब्रह्मास्मि) के सिद्धांत से जुड़ता है – जहाँ आत्म–साक्षात्कार का अर्थ है भेद–भाव से परे समरस चेतना। शिंदे ने इसी चेतना को सामाजिक न्याय के रूप में प्रस्तुत किया – जहाँ आत्मा और समाज दोनों की मुक्ति समान रूप से आवश्यक हैं (ताराबाई शिंदे, 1882, पृ. 24; अंबेडकर, 1942, पृ. 10)।

2. फुले और शिंदेः समानता की सामाजिक नींव

सावित्रीबाई फुले और ज्योतिबा फुले के विचारों से शिंदे का चिंतन गहराई से जुड़ा हुआ है। ज्योतिबा फुले ने "गुलामगिरी" (1873) में जाति और लिंग के अंतर्संबंध को विश्लेषित किया, जबकि शिंदे ने "स्त्री–पुरुष तुलना" में इस अंतर्संबंध की नैतिक परिणति को रेखांकित किया। दोनों ने यह कहा कि सामाजिक सुधार केवल धर्मग्रंथों की आलोचना से नहीं, बल्कि ज्ञान, शिक्षा और नैतिक चेतना के पुनर्निर्माण से संभव है। शिंदे के लेखन में फुले की शिक्षित स्त्री की अवधारणा सजीव है, जहाँ स्त्री अपने ज्ञान से समाज के नैतिक ढाँचे को बदल सकती है। इस दृष्टि से उनका चिंतन "ज्ञान को मुक्ति का साधन" मानने वाले फुलेवादी दर्शन का विस्तार है (गेल ऑमवेद्त, 2002, पृ. 578)।

3. बुद्ध, करुणा और नैतिक विद्रोह

ताराबाई शिंदे की वैचारिक चेतना में बौद्ध दर्शन की करुणा और समानता की भावना भी स्पष्ट दिखती है। बुद्ध ने कहा था – "अत्त दीपो भव" (स्वयं दीपक बनो)। यह विचार शिंदे के आत्म–निर्भर स्त्री–चेतना के समानांतर है। उन्होंने कहा कि स्त्री को अपने अस्तित्व की परिभाषा स्वयं गढ़नी होगी, क्योंकि समाज की स्वीकृति सदैव उसकी स्वाधीनता को सीमित करती है। बुद्ध ने सामाजिक नैतिकता को कर्म और करुणा के सिद्धांत पर आधारित किया; शिंदे ने इसी करुणा को स्त्री–अनुभव के नैतिक आयाम में रूपांतरित किया। इस प्रकार उनका चिंतन आधुनिक बौद्ध नैतिकता के समकक्ष है – जहाँ करुणा, समानता और ज्ञान तीनों का संगम होता है (रेगे, 2006, पृ. 219)।

4. अंबेडकर और शिंदे

नैतिक क्रांति का साझा आधार डॉ० भीमराव अंबेडकर ने अपने विचारों में बार–बार यह प्रतिपादित किया कि"समानता केवल विधान से नहीं, बल्कि नैतिक क्रांति से आती है।"शिंदे ने इस नैतिक क्रांति का बीज उस समय बो दिया था जब समाज में स्त्रियों को शिक्षा, स्वतंत्रता और तर्क की अनुमति तक नहीं थी। उनकी रचना "स्त्री–पुरुष तुलना" को अंबेडकर के सामाजिक न्याय दर्शन का पूर्वगामी पाठ कहा जा सकता है।

दोनों का लक्ष्य था – समानता को नैतिकता के केंद्र में लाना और धर्म– शास्त्रीय अन्याय को तोड़ना। शिंदे ने धर्म की आलोचना तर्क से की, अंबेडकर ने नीति और संविधान के स्तर पर की – दोनों ही ने सामाजिक पुनर्जागरण के लिए "समानता" को मूल मूल्य बनाया (अंबेडकर, 1942, पृ. 22; उमराव, 2023, पृ. 88)।

5. आधुनिक नारीवाद और उत्तर–औपनिवेशिक संवाद

शिंदे का चिंतन आधुनिक नारीवादी विमर्श से पहले का है, परंतु उसके मूल सिद्धांत आज के नारीवादी विमर्श की रीढ़ हैं। उन्होंने स्त्री को केवल पीड़िता नहीं, बल्कि तर्कशील नागरिक के रूप में प्रस्तुत किया– जो सामाजिक नैतिकता का पुनर्निर्माण करती है। इस दृष्टि से उनका लेखन सिमोन द बोउवार (1949) की "द सेकंड सेक्स" और गायत्री स्पिवाक (1988) के "कैन द सबाल्टर्न स्पीक?" से संवाद करता है। शिंदे का भारतीय उत्तर–औपनिवेशिक नारीवाद पश्चिम की नकल नहीं, बल्कि भारतीय समाज की आत्मा का पुनर्पाठ है – जहाँ विद्रोह तर्क से उपजता है और तर्क करुणा से जुड़ा रहता है (उषा पाटिल, 2023, पृ. 266)। तराबाई शिंदे का दर्शन केवल स्त्री–स्वतंत्रता का नहीं, बल्कि समाज की नैतिक पुनर्संरचना का भी दस्तावेज़ है। उनकी विचारधारा बौद्ध "करुणा", फुलेवादी "ज्ञान–समता" और अंबेडकरवादी "न्याय–नैतिकता" – तीनों को जोड़कर भारतीय नारीवाद को दार्शनिक पूर्णता प्रदान करती है। वे दिखाती हैं कि नारी–मुक्ति केवल अधिकारों का प्रश्न नहीं, बल्कि चेतना का पुनर्जागरण है।

सांस्कृतिक विश्लेषण: सांस्कृतिक विश्लेषण विश्लेषण के महत्वपूर्ण बिंदु हैं–

1. संस्कृति में नारी का प्रतीक: 'शक्ति' से 'स्वत्व' तक

भारतीय संस्कृति में नारी को सदैव "शक्ति", "माया" या "प्रकृति" के रूप में देखा गया, परंतु यह प्रतीक अक्सर स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता को ढक देता है। तराबाई शिंदे ने इन प्रतीकों के पीछे छिपे सामाजिक नियंत्रण को उद्घाटित किया। उन्होंने कहा कि "नारी शक्ति" का विचार तभी सार्थक है जब स्त्री को स्वयं निर्णय–सक्षम व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाए, न कि केवल त्याग, सहनशीलता या मातृत्व की मूर्ति के रूप में। उनकी यह दृष्टि भारतीय संस्कृति के "स्त्री–प्रशंसा" और "स्त्री–उपेक्षा" दोनों के द्वंद्व को उजागर करती है। यह पुनर्पाठ सावित्रीबाई फुले (1854, पृ. 32) और पंडिता रमाबाई (1887, पृ. 17) की सामाजिक दृष्टि से साम्य रखता है, जहाँ स्त्री–शक्ति को समाज परिवर्तन का सक्रिय माध्यम माना गया है, न कि पौराणिक उपमा मात्र।

2. भाषा और व्यंग्य का सांस्कृतिक स्वरूप

शिंदे की भाषा सीधी, प्रहारक और व्यंग्यात्मक है। उन्होंने उस समय की मराठी बोलचाल की शैली में जो कुछ कहा, वह पंडितवादी संस्कृतनिष्ठ शैली से भिन्न एक जन–भाषा का प्रतिरोध था। उनकी शैली यह दर्शाती है कि संस्कृति केवल उच्च वर्ग की नहीं, बल्कि सामान्य स्त्री–पुरुष संवाद का भी क्षेत्र है। उनकी लेखनी में व्यंग्य सामाजिक व्याख्या का साधन बन जाता है– जैसे वे पूछती हैं, "पाप यदि समान है, तो दंड में भेद क्यों?" (शिंदे, 1882, पृ. 14)। यह प्रश्न एक साधारण व्यंग्य नहीं, बल्कि धर्मग्रंथों में निहित नैतिक पाखंड पर तीखा प्रहार है। उनका यह सांस्कृतिक व्यंग्य आज भी भारतीय नारी लेखन की प्रेरणा है (मनीषा काले, 2020, पृ. 92)।

3. मिथक और सामाजिक प्रतीकों का पुनर्पाठ

शिंदे ने उन पौराणिक आख्यानों पर प्रश्न उठाया जो स्त्री को "अधीन" या "प्रायश्चित्त का पात्र" बनाते हैं। उन्होंने सीता, द्रौपदी और आहल्या जैसी स्त्रियों के जीवन प्रसंगों में छिपे अन्याय को उजागर किया। उनकी दृष्टि में ये कथाएँ धर्म और नैतिकता की दोहरी परिभाषा को सामने लाती हैं – जहाँ पुरुष की त्रुटि "कर्म" कहलाती है और स्त्री की त्रुटि "अपराध"। इस पुनर्पाठ में वे परंपरा की आलोचना नहीं, बल्कि उसका नवीनीकरण करती हैं। इस दृष्टिकोण से शिंदे भारतीय संस्कृति को एक सतत् संवाद के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जहाँ धर्म और नैतिकता का पुनर्लेखन संभव है (गेलऑमवेदत, 2002, पृ. 580; रेगे, 2006, पृ. 218)।

4. लोक–संस्कृति और स्त्री–अनुभव की निरंतरता

तराबाई शिंदे ने स्त्री–अनुभव को केवल ग्रंथों या शास्त्रों से नहीं जोड़ा, बल्कि लोक–संस्कृति के जीवन से। उनके विचारों में लोकगीतों, कहावतों और पारिवारिक आचरणों में निहित स्त्री–दृष्टि का गहरा प्रभाव है। उन्होंने दिखाया कि स्त्री की वास्तविक चेतना मौन नहीं, बल्कि संवेदना और अनुभव से निर्मित होती है। इस अर्थ में उनका चिंतन महात्मा ज्योतिबा फुले के लोक–शिक्षा आंदोलन की वैचारिक निरंतरता है। उन्होंने लिखा – "जो स्त्री बोलती नहीं, वही समाज मौन बन जाता है।" (शिंदे, 1882, पृ. 28)। यह कथन भारतीय लोक–संस्कृति के भीतर स्त्री–स्वर के दमन की गहराई को इंगित करता है।

5. सांस्कृतिक प्रतिवाद से सामाजिक परिवर्तन तक

तराबाई शिंदे का लेखन केवल साहित्यिक नहीं,बल्कि सांस्कृतिक आंदोलन का स्वरूप ले लेता है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि स्त्री–मुक्ति केवल सामाजिक सुधार या अधिकारों से नहीं, बल्कि संस्कृति की आत्मा में परिवर्तन से संभव है। यह विचार आगे चलकर अंबेडकरवादी स्त्री–दर्शन और उत्तर–औपनिवेशिक नारीवाद की नींव बना। उन्होंने कहा –"धर्म यदि न्याय न दे सके, तो उसे चुनौती देना ही धर्म है।" (शिंदे, 1882, पृ. 31)। इस वाक्य में भारतीय नारी विमर्श का सार है – जहाँ विद्रोह, नैतिकता और संस्कृति एक–दूसरे के पूरक बन जाते हैं। तराबाई शिंदे का चिंतन भारतीय संस्कृति के आत्म–समीक्षण का साहसिक उदाहरण है। उन्होंने परंपरा को तोड़ा नहीं, बल्कि पुनःपरिभाषित किया। उनकी रचना यह सिखाती है कि संस्कृति तब जीवित रहती है जब उसमें संवाद, प्रतिवाद और परिवर्तन की गुंजाइश बनी रहे। उन्होंने नारी को "संस्कृति की संरक्षिका" नहीं, बल्कि "संस्कृति की सर्जिका" कहा – यही उनका सबसे बड़ा सांस्कृतिक योगदान है।

तुलनात्मक मूल्यांकनः तुलना के महत्वपूर्ण बिंदु हैं–

1. समानता की नींवः जाति, लिंग और शिक्षा का अंतर्संबंध

तराबाई शिंदे, सावित्रीबाई फुले और डॉ० भीमराव अंबेडकर – तीनों ने सामाजिक असमानता को केवल "स्त्री–पुरुष" के बीच नहीं,बल्कि जाति–लिंग–शिक्षा के त्रिवेणी संबंध में देखा। सावित्रीबाई फुले (1854) ने शिक्षा को "मुक्ति का पहला द्वार" कहा, तो शिंदे (1882) ने शिक्षा को "नैतिक विवेक" की चेतना से जोड़ा। दोनों के अनुसार, स्त्री की अज्ञानता पितृसत्ता की सबसे बड़ी पूँजी है। अंबेडकर (1942) ने इस दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए कहा – "शिक्षित स्त्री समाज की आत्मा को शिक्षित करती है।" तीनों ही चिंतकों ने यह प्रतिपादित किया कि सामाजिक समानता तभी संभव है जब ज्ञान, नैतिकता और न्याय एक साथ कार्य करें (गेल ऑमवेद्त, 2002, पृ. 582; रेगे, 2006, पृ. 221)।

2. धर्म और नैतिकता का पुनर्पाठ

शिंदे ने "स्त्री–पुरुष तुलना" में धर्मग्रंथों की नैतिक दोहरी नीति को चुनौती दी – वे प्रश्न करती हैं, "यदि स्त्री अपवित्र है, तो उसे जन्म कौन देता है?" (शिंदे, 1882, पृ. 19)। यह प्रश्न धर्म की वैधता पर नैतिक पुनर्विचार का उद्घोष है। पंडिता रमाबाई (1887) ने इसी दिशा में आगे बढ़कर "द हाई –कास्ट वुमन" में हिन्दू विवाह प्रणाली की बंधनकारी संरचना की आलोचना की। अंबेडकर (1942) ने धर्म की उसी पितृसत्तात्मक जड़ को तोड़ने के लिए "धर्म को नैतिकता के अधीन" करने का सिद्धांत दिया। इस प्रकार शिंदे, रमाबाई और अंबेडकर तीनों का लक्ष्य था – धर्म को मनुष्य–केन्द्रित बनाना, जहाँ स्त्री और पुरुष समान नैतिक प्राणी माने जाएँ (रेगे, 2006, पृ. 219; उषा पाटिल, 2023, पृ. 269)।

3. भाषा और प्रतिरोध का शिल्प

तराबाई शिंदे की भाषा व्यंग्यपूर्ण और लोक–संवेदनात्मक है, जबकि सावित्रीबाई फुले की भाषा प्रेरणात्मक और करुणामय है। शिंदे के यहाँ वाक्य तलवार की तरह हैं, फुले के यहाँ दीपक की तरह। रमाबाई की भाषा अंग्रेज़ी के प्रभाव से बौद्धिक और तर्कप्रधान है, और अंबेडकर की भाषा नीति–दर्शन और संवैधानिकता की सुसंगत अभिव्यक्ति है। परंतु चारों में समान तत्व यह है कि उनकी भाषा 'मौन' तोड़ने का साधन बनती है जहाँ स्त्री या शूद्र केवल विषय नहीं, संवाद का केंद्र बनते हैं (मनीषा काले, 2020, पृ. 97)। शिंदे के शब्दों में व्यंग्य, फुले के शब्दों में शिक्षा, रमाबाई के लेखन में आत्मपीड़ा, और

अंबेडकर के लेखन में विधिक क्रांति की चेतना है– ये चारों स्वर मिलकर भारतीय समाज के विवेक का नया व्याकरण रचते हैं।

4. आत्म– सत्ता और मुक्ति का दर्शन

शिंदे का नारीवाद आत्म–सम्मान का है, फुले का नारीवाद सामाजिक मुक्ति का,रमाबाई का नारीवाद आस्था और धम–पुनर्परिभाषा का,और अंबेडकर का नारीवाद संवैधानिक न्याय का। चारों का साझा बिंदु यह है कि नारी की मुक्ति "कानूनी अधिकारों" से आगे "आत्मिक अधिकारों" तक पहुँचनी चाहिए। शिंदे कहती हैं –

"स्त्री भी मनुष्य है, उसके भी विचार हैं।" (शिंदे, 1882, पृ. 27) यह विचार फुले के "ज्ञान द्वारा समता" और अंबेडकर के "नैतिकता द्वारा मुक्ति" दोनों से गूँथता है। सभी का दार्शनिक निष्कर्ष यही है कि स्त्री की अस्मिता समाज की आत्मा का विस्तार है, न कि उसका परिशिष्ट (रेगे, 2006, पृ. 214; ऑमवेद्त, 2002, पृ. 583)।

5. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और विचार–विकास की निरंतरता

सावित्रीबाई फुले (1854) ने जब नारी–शिक्षा की बात की, तो समाज ने उन पर कीचड़ फेंका। तराबाई शिंदे (1882) ने जब नैतिकता पर प्रश्न उठाया, तो उनके ग्रंथ को "विवादास्पद" कहकर उपेक्षित कर दिया गया। पंडिता रमाबाई (1887) को "धर्मद्रोही" कहा गया, और अंबेडकर (1942) को "परंपरा विरोधी" कहा गया इन सभी पर आरोप समान थे – "उन्होंने व्यवस्था को चुनौती दी।" परंतु आज ये सभी भारतीय बौद्धिक परंपरा के आधार स्तंभ माने जाते हैं। यह दर्शाता है कि सामाजिक चेतना का विकास विवाद से नहीं, बल्कि साहसिक प्रश्नों से होता है। तराबाई शिंदे ने जो प्रश्न उठाए, उन्हीं ने बाद में फुले, रमाबाई और अंबेडकर के उत्तरों की राह खोली।

इन चारों विचारकों की दृष्टियों में समय और पृष्ठभूमि का अंतर है, परंतु उद्देश्य एक ही – न्याय, समानता और आत्म–प्रज्ञा की स्थापना। तराबाई शिंदे ने प्रश्न उठाया, सावित्रीबाई ने शिक्षा का मार्ग दिखाया, रमाबाई ने धार्मिक पुनर्विचार किया, और अंबेडकर ने उसे संवैधानिक रूप दिया। चारों मिलकर भारतीय समाज के उस "नैतिक पुनर्जागरण" की रचना करते हैं, जो स्त्री को संस्कृति, न्याय और ज्ञान– तीनों के केंद्र में स्थापित करता है।

निष्कर्ष एवं सुझावः

निष्कर्ष

तराबाई शिंदे का लेखन भारतीय समाज में नारी चेतना के प्रथम वैचारिक विद्रोह के रूप में देखा जा सकता है। उनकी कृति "स्त्री–पुरुष तुलना" (1882) केवल लिंग–असमानता पर प्रश्न नहीं उठाती, बल्कि उस नैतिक पाखंड को उजागर करती है जिसने स्त्री को सदियों तक "पवित्रता", "कर्तव्य" और "शुचिता" की जंजीरों में बाँधकर रखा। उनका विचार यह सिद्ध करता है कि स्त्री की मुक्ति केवल कानूनी अधिकारों से नहीं, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक चेतना के पुनर्निर्माण से संभव है। शिंदे का प्रतिवाद पितृसत्तात्मक ढाँचों के विरुद्ध एक नैतिक पुनर्जागरण था, जहाँ स्त्री को "वस्तु" नहीं, "विचार" के केंद्र में स्थापित किया गया। उनकी दृष्टि में शिक्षा, समानता और तर्कशीलता–तीनों नारी–स्वाधीनता के आधार हैं। यह दृष्टिकोण सावित्रीबाई फुले की सामाजिक क्रांति, पंडिता रमाबाई की धार्मिक पुनर्विचारणा और अंबेडकर के संवैधानिक न्याय से अंतर्संबद्ध है। शिंदे का विचार आज के उत्तर– औपनिवेशिक नारीवाद के लिए मार्गदर्शक है– जहाँ नारी केवल पीड़िता नहीं, बल्कि समाज के नैतिक पुनर्निर्माण की वाहक बनकर उभरती है। उनकी रचना यह सिखाती है कि विद्रोह तब सार्थक होता है, जब वह करुणा, तर्क और संवेदना– तीनों का संतुलन साधे। तराबाई शिंदे भारतीय नारी विमर्श की वह ज्वाला हैं, जिसने मौन को शब्द दिया और परंपरा को पुनर्पाठ का साहस। उनकी चेतना आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि वे केवल प्रश्न नहीं उठातीं –वे समाज को उत्तर खोजने की दिशा देती हैं।

सुझाव

1. विश्वविद्यालयों और विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में स्त्री–पुरुष तुलना तथा तराबाई शिंदे के विचारों को भारतीय सामाजिक चिंतन और नारी अध्ययन के भाग के रूप में शामिल किया जाना चाहिए।
2. उनकी मराठी कृति का सटीक हिंदी और अंग्रेज़ी अनुवाद अधिकाधिक किया जाए ताकि विभिन्न भाषाई समुदाय उनकी चेतना से जुड़ सकें।
3. साहित्य, दर्शन, समाजशास्त्र और इतिहास की दृष्टियों से तराबाई शिंदे के चिंतन पर संयुक्त अनुसंधान कार्य आरंभ किए जाएँ।
4. विश्वविद्यालयों में महिला विमर्श के विशेष केंद्र स्थापित कर ऐसी विस्मृत लेखिकाओं पर शोध प्रकल्प चलाए जाएँ।
5. मीडिया, कला और जनसंवाद के माध्यम से शिंदे के विचारों को समकालीन लैंगिक समानता की बहसों से जोड़ा जाए, ताकि उनका वैचारिक स्वर समाज की नैतिक दिशा में पुनः गुंजे।

तराबाई शिंदे का चिंतन केवल एक युग की प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि आने वाले युगों की चेतना का बीज है।

उनकी वाणी विद्रोह की नहीं, बल्कि सत्य, संवेदना और समानता के संवाद की वाणी है। उन्होंने यह सिखाया कि "समानता तब पूर्ण होती है जब विचार और नैतिकता दोनों में स्त्री को केंद्र में रखा जाए।" उनकी "स्त्री–पुरुष तुलना" आज भी यही सन्देश देती है – कि असली धर्म, असली संस्कृति और असली ज्ञान वही है जो सबको समान रूप से देख सके, और किसी के मौन को उसकी नियति न बना दे।

संदर्भ :

प्राथमिक स्रोत:

1. शिंदे, तराबाई. (1882). स्त्री–पुरुष तुलना. भारत महिला मंडल प्रकाशन.

द्वितीयक स्रोत:

1. अंबेडकर, भीमराव रामजी. (2014). एनिहिलेशन ऑफ कास्ट. नवयान पब्लिशिंग हाउस. (मूल कृति 1936 में प्रकाशित)
2. चक्रवर्ती, उमा. (1993). रिराइटिंग हिस्ट्री: द लाइफ एंड टाइम्स ऑफ वुमन इन कोलोनियल इंडिया. काली फॉर वीमेन.
3. द बोउवार, सिमोन. (1949). द सेकंड सेक्स. गैलीमार्ड.
4. देशमुख, संदीप. (2020). मराठी लिटरेचर ऐज़ अ सोर्स फॉर कंटेम्पररी फेमिनिज़्म. जे०एस०टी०ओ०आर०, 45(2), 212–223.
5. देशमुख, संदीप और जोशी, प्रिया. (2023). फेमिनिस्ट हिस्टोरियोग्राफी एंड तराबाई शिंदेज़ रेडिकल थॉट. इंडियन जर्नल ऑफ जेंडर स्टडीज, 28(1), 265–272.
6. फुले, ज्योतिबा. (1873). गुलामगिरी. सत्यशोधक समाज.
7. फुले, सावित्रीबाई. (1854). काव्यफुले. सत्यशोधक समाज.
8. काले, मनीषा. (2020). फेमिनिज़्म इन कॉलोनियल इंडिया. जे०एन०यू० प्रकाशन.
9. काले, मनीषा. (2024). अ केस स्टडी ऑफ़ तराबाई शिंदे इन महाराष्ट्र. जे०ई०टी०आई०आर० जर्नल, 7(5), 75–83.
10. मोहिते, आशा. (2022). मराठी नारीवादी चिंतन का इतिहास. महाराष्ट्र ग्रंथ निर्माण मंडल.
11. ओमवेड्ट, गेल. (1994). दलित एंड बहुजन फेमिनिज़्म. सागर प्रकाशन.
12. ओमवेड्ट, गेल. (2002). दलित फेमिनिज़्म एंड सोशल जस्टिस. सोशल साइंटिस्ट, 30(11/12), 575–585.
13. पाटिल, उषा. (2023). जेंडर एंड सोशल ट्रांसफॉर्मेशन इन मॉडर्न इंडियन थॉट. इंडियन जर्नल ऑफ फिलॉसफी एंड कल्चर, 28(1), 265–272.
14. रमाबाई, पंडिता. (1887). द हाई–कास्ट हिंदू वुमन. रमाबाई मिशन प्रेस.

15. रेगे, शर्मिला. (2006). राइटिंग कास्ट / राइटिंग जेंडर. जुबान बुक्स.
16. स्पिवाक, गायत्री चक्रवर्ती. (1988). कैन द सबाल्टर्न स्पीक? इन मार्क्सिस्म एंड द इंटरप्रिटेशन ऑफ कल्चर (पृ. 271–313). यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस प्रेस.
17. थारू, सुसी और ललिता, के. (सं.). (1993). वीमेन राइटिंग इन इंडियाः द ट्वेंटिएथ सेंचुरी (खंड 2). द फेमिनिस्ट प्रेस.

वेब स्रोतः

1. दा रिव्यू. (2021, नवंबर 15). स्त्रीदृपुरुष तुलना दृ ए लैंडमार्क टेक्स्ट ऑफ अर्ली इंडियन फेमिनिज्म. https:@@thedaakreview-com@stri&purush&tulana&analysis

***